इकाई 12 ज़ियाउद्दीन बरनी*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पृष्ठभूमि

12.3 बरनी की रचनाएँ

12.4 इतिहास के संबंध में बरनी की अवधारणा

12.5 बरनी के लेखन में ऐतिहासिक तथ्य/पक्षपात

12.6 बरनी की राजत्व-संबंधी अवधारणा

12.7 बरनी के लेखन में समय तथा कालानुक्रम की अवधारणा

12.8 बरनीः अर्थशास्त्री के रूप में

12.9 बरनी के विचारों में तर्क तथा तार्किकता

12.10 बरनी की उच्च-कुल तथा निम्न-कुल की अवधारणा

12.11 बरनी के लेखन में धर्म तथा इतिहास

12.12 सारांश

12.13 शब्दावली

12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.15 संदर्भ ग्रंथ

12.16 शैक्षणिक वीडियो

12.0 उद्देश्य

यह इकाई इतिहासकार के रूप में ज़ियाउद्दीन बरनी और उसके इतिहास-संबंधी 'विचार' तथा इतिहास लेखन पर केंद्रित है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समर्थ होंगेः

- उस पृष्ठभूमि को समझने में जिसने बरनी के ऐतिहासिक लेखन को प्रभावित किया,
- ज़िया बरनी द्वारा रचित प्रमुख कृतियों को जानने में,
- बरनी के इतिहास-संबंधी विचार को समझने में,
- बरनी के व्यक्तिगत पक्षपात तथा वस्तुनिष्ठता को जानने में,
- बरनी के राजत्व के विचार को रेखांकित करने में,
- बरनी के लेखन में निहित समय की अवधारणा का परीक्षण करने में,
- तार्किक विज्ञानों और दर्शन के संबंध में बरनी के मत का विश्लेषण करने में,
- बरनी के उच्च-कुल-निम्न-कुल की अवधारणा को समझने में, और
- धर्म तथा इतिहास के संबंध में बरनी के मत पर विचार करने में।

12.1 प्रस्तावना

हमने सल्तनत काल के दौरान इतिहास लेखन की प्रवृत्ति के विश्लेषण के लिए ज़ियाउद्दीन बरनी को चुना है, न केवल इसलिए कि वह एक महान् विद्वान और सफल लेखक था, बल्कि इतिहास के संबंध

* प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

में उसकी समझ के आधार पर। वह सम्भवतः सल्तनत कालीन इतिहासकारों में प्रथम था जो चर्चा करता है कि इतिहास क्या है? ऐतिहासिक विवरणों को कलमबद्ध करने में इतिहासकार का क्या कर्तव्य है? यूरोपीय इतिहासलेखन के इस सामान्य दावे के विपरीत कि यहाँ ऐतिहासिक चेतना का पूर्ण रूप से अभाव था, यह बरनी था जो वास्तव में इस विषय पर लिखता और चिंतन करता है कि 'इतिहास क्या है'? और 'एक इतिहासकार का शिल्प क्या है?'अपनी *तारीख़-ए फिरोज़शाही* की प्रस्तावना में उसने इस विषय पर एक लंबा उद्धरण प्रस्तुत किया है।

बरनी की रचनाओं में सघन रूप से तत्कालीन 'राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवेश' की झलक मिलती है। पक्षपात तथा पूर्वाग्रह, विशेष रूप से उच्च कुलीनों के प्रति उसके पक्षपातपूर्ण पूर्वाग्रह, बरनी के इतिहास लेखन में एक प्रमुख तत्व के रूप में उभरता है। इसके अतिरिक्त बरनी के लेखन में 'निरपेक्ष वस्तुनिष्ठता' को ढूँढ पाना मुश्किल है। बरनी घटनाओं की व्याख्या करते समय अपने समय के परिवेश से अत्यधिक प्रभावित नज़र आता है। समकालीन सामाजिक यथार्थ तथा उसके निजी पूर्वाग्रहों का प्रभाव इतना मज़बूत है कि अक्सर दो विभिन्न कालों के एक जैसे विचारों और घटनाओं की व्याख्या एक-दूसरे का प्रतिबिंब प्रतीत होती हैं। घटनाओं की, की गई उसकी प्रत्येक व्याख्या समकालीन राजनीतिक-सामाजिक परिवेश के अनुरूप है। व्याख्याओं को अक्सर सामान्यीकरण के साथ जोड़ दिया गया है। तथापि, 'कार्य-कारण' का संबंध बरनी के लेखन में काफ़ी विशिष्ट स्थान रखता है।

बरनी के लेखन में ऐतिहासिक चेतना मुख्यतः राज्य के ढाँचे की जटिलताओं के आसपास बुनी गई थी। अतः, इसमें आपको राजतंत्र, राजा के कर्तव्यों, बल प्रयोग तथा हिंसा की भूमिका, उच्च कुल के विचार पर दिया गया बल, इत्यादि देखने को मिलेगा। बरनी का लेखन न केवल इस पर प्रकाश डालता है कि उसने अतीत को किस प्रकार देखा, बल्कि इसके साथ ही यह भी प्रस्तुत करने का प्रयास करता है कि राज्य या राजतंत्र को किस प्रकार कार्य करना चाहिए। यह दोनों विचार बरनी की *फ़तावा* और *तारीख़* में इस सीमा तक घुल-मिल गए हैं कि यह देख पाना मुश्किल है कि किस विचार ने किसको प्रभावित किया है। इस प्रकार इन दोनों को परस्पर संयुक्त रूप से पढ़ा और व्याख्यायित किया जाना चाहिए, इसको ध्यान में रखते हुए कि बरनी क्या प्रस्तुत करना चाह रहा था और वास्तव में क्या घटित हो रहा था, जिसका बरनी अक्सर ही एक मूक दर्शक मात्र था। तथापि, बरनी अपने आदर्शवाद को राजनीतिक व्यवहारिकता के अनुरूप भी ढालता है। पीटर हार्डी बरनी के लेखन की दो महत्वपूर्ण विशेषताओं की ओर संकेत करते हैं: क) बरनी *फ़तावा* में व्यक्त अपने विचारों को *तारीख़* के ऐतिहासिक चरित्रों के संवादों में डालता है; और ख) वह सुल्तान फ़िरोज़ की एक सच्चे मुस्लिम और 'दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ सुल्तान' के रूप में प्रशंसा करता है।

12.2 पृष्ठभूमि

बरनी को दिल्ली के आठ सुल्तानों, ग़ियासुद्दीन बलबन (1266-1286) से फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ (1351-1388) तक के दौर में जीने का सौभाग्य मिला था। तथापि, बरनी ने विरोधाभासी जीवनों को जीया था। एक ओर तो, उसे मुहम्मद बिन तुग़लक़ का संरक्षण प्राप्त हुआ और उसने संतुष्टिपूर्ण जीवन का स्वाद चखा था; और दूसरी ओर इसके विपरीत उसकी मृत्यु घनघोर ग़रीबी और कुंठाओं के बीच हुई थी।

बरनी (1285-1358) बरन (आधुनिक बुलंदशहर, जिससे उसका उपनाम 'बरनी' पड़ा) से संबंध रखने वाले विद्वानों तथा ओहदेदारों के एक सम्मानित परिवार से संबंध रखता था। मुईद-उल मुल्क, बरनी के पिता, ने *सिपहसालार* हुसामुद्दीन (जो बाद में ***वकील-ए दर*** और तदंतर सुल्तान बलबन के ***हाजिब*** के महत्वपूर्ण पद तक पहुँचा) की पुत्री से विवाह किया था। मुईद-उल मुल्क स्वयं शाहज़ादे अर्कली ख़ान (जलालुद्दीन ख़ान के पुत्र) के *नायब* के पद पर प्रतिष्ठित हुआ था। अलाउद्दीन ख़लजी के अधीन वह बरन का *नायब-ओ ख़्वाजा* था। बरनी का चाचा आईन-उल मुल्क कड़ा और अवध के *मुक़्ता* के पद पर था और बाद में अलाउद्दीन ख़लजी के शासन के दौरान दिल्ली का *कोतवाल* बना।

बरनी ने स्वयं अरबी और फ़ारसी में अच्छी शिक्षा पाई थी। वह धर्म-विद्या तथा इस्लामी धर्मशास्त्र में विशेषज्ञता रखता था। उसमें इतिहास का गहरा बोध और समझ थी। बरनी एक विचारशील व्यक्तित्व का मालिक था। उसकी विद्वान-कवि रचनाकार अमीर खुसरो तथा **अमीर हसन सिज्ज़ी** के साथ घनिष्ठ निकटता थी। उसे प्रसिद्ध चिश्ती संत निज़ामुद्दीन औलिया का प्रेमपूर्ण अनुग्रह भी प्राप्त था।

निज़ामुद्दीन औलिया की दरग़ाह के पास, उसी परिसर में अपने पिता की कब्र के निकट दफ़नाए जाने का उसे सम्मान प्राप्त हुआ। उसे मुहम्मद बिन तुग़लक़ के दरबार में अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। **अमीर खुर्द,** उसका एक युवा समकालीन, यह टिप्पणी करता है कि वह एक परिष्कृत मस्तिष्क और दरबारी संस्कृति में अप्रतिम् प्रतिभा वाला व्यक्ति था। अमीर खुर्द उसकी प्रशंसा एक महान् वार्ताकार के रूप में भी करता है।

बरनी काफ़ी परिपक्व उम्र में शाही सेवा में 1334-1335 (मुहम्मद बिन तुग़लक़ के राज्य काल के दसवें वर्ष में, अपनी 50 साल की परिपक्व आयु में) में ही मुहम्मद बिन तुग़लक़ के काल में एक दरबारी सलाहकार के रूप में (*नदीम* अर्थात विश्वासपात्र) शामिल हो सका था और उसने मुहम्मद बिन तुग़लक़ की सत्रह वर्ष तक के लंबे समय तक सेवा की। लेकिन, फ़िरोज़ के राज्यारोहण के साथ उसके भाग्य का सितारा धुंधला पड़ गया। न केवल उसे भटनेर के किले में बंदी बना दिया गया था बल्कि वह मुश्किल से ही अपने प्राणों की रक्षा कर सका था और इस प्रकार उसने अपनी मृत्यु तक नितांत वित्तीय मुश्किलों और कुंठा के साथ जीवन-यापन किया। बरनी ने उत्साहपूर्वक फ़िरोज़ शाह का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की, उसने अपने मन में इसी इरादे को रखते हुए *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही* और *अखबार-उल बरमाकियान* को सुल्तान फ़िरोज़ को अर्पित किया था। और, *बरमकियान* में सुल्तान फ़िरोज़ की उदारता की प्रशंसा भी की, लेकिन अपने उद्देश्य में वह बुरी तरह से असफल रहा। यहाँ तक कि इस ग्रंथ को स्वयं फ़िरोज़ के सम्मुख प्रस्तुत होकर उसे भेंट करने की उसकी इच्छा तक साकार नहीं हो सकी। इस गुमनामी के दौर में ही उसने अपना अधिकांश साहित्य रचा था।

बरनी के लेखन को एक उचित परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए हमें उसकी पृष्ठभूमि के सापेक्ष रखकर उसका विश्लेषण करना होगा। बरनी एक विद्वान धर्मशास्त्री था और फ़ारसी इस्लामी संस्कृति में गहन रूप से प्रशिक्षित और रचा-बसा था। उसके लेखन का समस्त भंडार उसके इस प्रशिक्षण को ज़ाहिर करता है। और उसकी कृतियों की व्याख्या इस रोशनी में ही की जानी चाहिए। अन्य महत्वपूर्ण कारक था, मुहम्मद बिन तुग़लक़ के शासनकाल में उसे प्राप्त प्रतिष्ठा तथा कुलीनों के साथ उसके घनिष्ठ संबंध और उसी तरह फ़िरोज़ के साथ उसके कटु संबंध। इसके अतिरिक्त, एक सलाहकार के रूप में उसने राजनीतिक-प्रशासनिक विकासक्रमों को दिन-प्रतिदिन के आधार पर निकटता से देखा था।

बरनी की *तारीख़* का अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उसने जब एक बार अपनी *तारीख़* को पूरा कर लिया (फ़िरोज़ के शासनकाल के पाँचवे वर्ष में) तो बरनी को शाही अनुकंपा प्राप्त करना तो दूर, इसके बजाय उसे आलोचना ही प्राप्त हुई। तदनंतर, उसने दो वर्ष पश्चात् अपने ग्रंथ को संशोधित किया और फ़िरोज़ शाह के शासनकाल के पहले छः वर्षों का तुलनात्मक रूप से एक व्यापक वृत्तांत प्रस्तुत किया। इन दोनों संस्करणों की तुलना करना काफ़ी दिलचस्प रहेगा क्योंकि बाद के संस्करण में उसने कुछ घटनाओं को सार रूप में प्रस्तुत किया और कुछ अन्य को विस्तार के साथ वर्णित किया है। और, कभी-कभी उसके द्वारा दी गई व्याख्या और किसी बिंदु को दी गई महत्ता भी भिन्नता रखती है। पहले संस्करण में मुहम्मद बिन तुग़लक़ को बरनी द्वारा सकारात्मक दृष्टिकोण में दर्शाया गया है, तो दूसरे संस्करण में, बदली हुई परिस्थितियों और विपरीत हालात में बरनी का प्रशंसात्मक लहज़ा कुछ दब सा जाता है। अलाउद्दीन के बाज़ार नियंत्रण के उपाय पहले संस्करण में अत्यंत संक्षेप में प्रस्तुत किए गए हैं जो दूसरे संस्करण में विस्तार के साथ वर्णित हैं। पहले संस्करण में दिल्ली के साहित्यिक परिवेश और मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा अपने काल में साहित्यिक संस्कृति को दिए गए संरक्षण की पर्याप्त चर्चा है; साथ ही मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा राजधानी का स्थानांतरण पहले संस्करण में गायब नज़र आता है तो दूसरे संस्करण में इसकी विस्तार से चर्चा की गई है। इस सबसे यह संकेत मिलता है कि बरनी के लेखन, विशेषकर उसकी *तारीख़* के दो संस्करणों के बीच तुलना, से पता चलता है कि किस प्रकार यह इतिहासकार अपने ग्रंथ के लेखन में स्वयं की परिस्थितियों से प्रभावित था। साथ ही, बरनी द्वारा 'सत्य' को प्रस्तुत करने के दावे के बावजूद, चूंकि विचार स्थायी नहीं होते हैं, अतः बरनी की पक्षपातपूर्ण दृष्टि ने उनके लेखन को प्रभावित किया।

12.3 बरनी की रचनाएँ

बरनी ने अपने लेखन-कार्य को 69 वर्ष की वरिष्ठ आयु में शुरू किया और इसके बाद नौ ग्रंथों की रचना की। उसने सचेत रूप से 'चिरकालिक लोक स्मृति' के अलावा 'कुलीन व उच्च कुल से संबंध

रखने वालों', साथ ही पुस्तक कारोबार के लिए भी लिखा। बरनी ने कई प्रकार की कृतियों की रचना की। उसका *साहीफ़ा-ए नात-ए मुहम्मदी* या *सना-ए मुहम्मदी* विशुद्ध रूप से एक धार्मिक ग्रंथ था, जिसे उसने 70 वर्ष की आयु में 1353-54 में कलमबद्ध किया था। उसकी रचना *हसरतनामा* एक सूफ़ी लेखन-कार्य था, जिसमें शेख निज़ामुद्दीन के संस्मरण भी शामिल हैं, लेकिन यह ग्रंथ अब केवल सार रूप में रूप में मौजूद है, अमीर खुर्द के संकलन *सियार-उल औलिया* में। उसने किताबों के बाज़ार को ध्यान में रखते हुए *तारीख-ए बरमका,* वज़ीरों के बरमाक परिवार के भाग्य का इतिहास, जिन्हें ख़लीफ़ा हारून-अल रशीद ने गुमनामी में धकेल दिया था, की रचना की। अमीर खुर्द उसकी अन्य रचनाओं में *सलात-ए कबीर, इनायतनामा-ए इलाही* तथा *मआसिर-ए सादत* का भी उल्लेख करता है, जो बाद के काल में उपलब्ध नहीं रह गई थीं।

उसकी रचनाओं में इतिहास के विद्यार्थियों के लिए दो अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, *तारीख़-ए फ़िरोजशाही* (1357) और *फ़तावा-ए जहाँदारी* (संभवतः *तारीख़* के बाद और *तारीख़* के उपसंहार के रूप में लिखा गया एक संकलन[1])। जहाँ *फ़तावा* (शब्दशः विचार/सलाह) शासन की कला से संबंध रखती है और अरबी *मिरर ऑफ़ प्रिंसेस* की शैली में रचित है और ग़ज़नी के सुल्तान महमूद द्वारा अपने पुत्रों को और सत्ताधारी शासकों के लिए सलाह के रूप में लिखी गई है। वहीं *तारीख़* विशुद्ध रूप से बलबन के प्रारंभिक वर्षों से लेकर फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के शासनकाल तक के 95 वर्षों की ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण है, 'यह ईश्वर से भय रखने वाले मुस्लिम शासकों के लिए निर्देशों के एक सार-संग्रह की तरह था' (हार्डी 1960: 39)।

बोध प्रश्न-1

1) किस प्रकार बरनी की *तारीख-ए फ़िरोज़शाही* का प्रथम संस्करण दूसरे संस्करण से भिन्न था?

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित में से कौन सी किताबों को बरनी ने किताबों के बाज़ार को ध्यान में रखते हुए लिखा था?

क) *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही*

ख) *तारीख़-ए बरमका*

ग) *हसरतनामा*

घ) *फ़तावा-ए जहाँदारी*

3) निम्नलिखित में से किस किताब में निज़ामुद्दीन औलिया के संस्मरण भी संकलित हैं?

क) *हसरतनामा*

ख) *साहिफ़ा-ए नात-ए मुहम्मदी*

ग) *सलात-ए कबीर*

घ) *इनायतनामा-ए इलाही*

12.4 इतिहास के संबंध में बरनी की अवधारणा

बरनी में इतिहास का गहरा बोध था। बरनी स्पष्ट रूप से बताता है कि इतिहास से क्या सबक सीखने को मिलते हैं और इतिहास से कोई क्या शिक्षा ग्रहण कर सकता है। वह तर्क देता है कि अतीत की घटनाओं का भविष्य की गतिविधियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उसने टिप्पणी की है कि बलबन द्वारा

[1] इरफ़ान हबीब (1998: 24) का मत है कि इसकी रचना निष्कर्ष के रूप में *तारीख़* के बाद हुई थी। लेकिन, आई. एच., सिद्दीकी (2014: 206) का मानना है कि इसकी स्वतंत्र शैली संकेत करती है कि इसकी रचना फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के शासनकाल से पहले हुई थी।

अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए अपनाई गई लौह और रक्त की नीति का परिणाम 17 वर्षों के भीतर ही उसके वंश के विनाश के रूप में निकला।

बरनी अपने समय का एक सच्चा इतिहासकार था। वह अपनी *तारीख़* में निरंतरता और परिवर्तनों की चर्चा करता है। एक इतिहासकार के क्या कर्तव्य हैं? वह इतिहासकार के शिल्प की बात करता है। उसके लिए इतिहासकार का शिल्प एक कवि और कथा-लेखक से भिन्न होता है। बरनी ने अपने प्रथम अध्याय (*मुक़द्दिमा*) को पहले और दूसरे संस्करण में बदला नहीं है, यहाँ हम उसे एक श्रेष्ठ विचारक, एक दार्शनिक, एक विचारवान प्राणी और एक आलोचनात्मक इतिहासकार के रूप में देखते हैं। वह इस पर विचार करता है कि इतिहास लेखन की प्रविधि और इसके उद्देश्य क्या हैं? वह इस पर बल देता है कि एक इतिहासकार को राजाओं और अमीरों के दुष्टतापूर्ण कृत्यों को छुपाना नहीं चाहिए और न ही ऐतिहासिक वृत्तांत लिखते समय चापलूसी का अनुसरण करना चाहिए। बरनी की एक सच्चे इतिहासकार के रूप में तारीफ़ करते हुए मोहम्मद हबीब (2016: 316) कहते हैं, 'बरनी के लिए इतिहास एक दस्तावेज़ या एक इतिवृत्त या एक *तारीख़* नहीं है बल्कि यह सुपरिभाषित रूप से एक विज्ञान है – सामाजिक व्यवस्था का विज्ञान – और इसका आधार धर्म या परम्परा नहीं बल्कि पर्यवेक्षण तथा अनुभव है।' इतिहासकार के रूप में बरनी की तारीफ़ करते हुए पीटर हार्डी (1960: 20) बरनी की *तारीख़* का 'चैतन्य दर्शन की एक सशक्त तथा प्रखर अभिव्यक्ति के रूप में वर्णन करते हैं जो बरनी को महज़ तारीख़ों और इतिवृत्तों के लेखकों या रचनाकारों की श्रेणी से ऊपर उठा देता है।'

बरनी उस युग में रह रहा था जब इस्लामी दुनिया में इतिहास-संबंधी विचार उभरना शुरू हुए थे, विशेष रूप से **ज़ायद अल-बैहाक़ी** (1097-1169,) मुहम्मद-इब्न इब्राहिम अल-इजी (मृ. 1381-1382) तथा शम्स अल-दीन सख़ावी (1427-1497) का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने विस्तार से इतिहास के उपयोग के संबंध में चर्चा की है। अपनी *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही* की प्रस्तावना में बरनी ने एक संपूर्ण खंड (इतिहास के ज्ञान; *इल्म-ए तारीख़*) को समर्पित किया है।

बरनी इतिहास के ज्ञान (*इल्म-ए तारीख़*) को हस्तांतरणीय ज्ञान (*अल-उलूम अल-नक़लिया; मनकूलात*) की श्रेणी में रखता है, वह *मनकूलात* को *माकुलात* (*अक़्ल* पर आधारित ज्ञान, *अल-उलूम अल-अक़लिया;* ज्ञान की तार्किक पद्धतियाँ – गणित चिकित्सा, दर्शन, तर्कशास्त्र और खगोल विद्या) के ऊपर तरज़ीह देता है। उसका तर्क है कि 'दुनिया के मामलों को *अक़्ल* के माध्यम से नहीं जाना जा सकता है।' इसका परिणाम 'सच्चे ईमान तथा धार्मिक समुदाय पर संदेह में निकलता है' (ऑवर 2015: 216-217)। इतिहास, बरनी के लिए, गहन रूप से *मनकूलात* के साथ जुड़ा हुआ था। बरनी इतिहास के संबंध में अपने विचारों के निर्माण में इस प्रकार मुख्यतः *कुरान*-संबंधी ज्ञान (*तफसीर*), *हदीस* (पैगंबर के वचन और कृत्य), इस्लामी क़ानून (*फ़िक़्ह*) और शेख़ों के तरीकों (*तरीक़त -ए मशायख़*) पर निर्भर रहा है। उसके लिए इतिहास का ज्ञान और *हदीस* समरूपी हैं। इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण था, जैसा कि बरनी तर्क देता है, विवरणकारों की श्रृंखला (*इसनाद*) द्वारा प्रस्तुत आलोचना/प्रशंसा और किन परिस्थितियों में किसी विशेष *हदीस* का बखान किया गया था, उसकी सत्यता को स्थापित करने की प्रक्रिया में ये सभी तत्व इतिहास का भी उतना ही हिस्सा थे। बरनी के अनुसार, 'सारभूत रूप से यह इतिहास का ज्ञान ही है जो मुस्लिमों को पैग़ंबर तथा उनके साथियों के कृत्यों को समझने में समर्थ बनाता है' (ऑवर 2015: 213)। बरनी के लिए इतिहास प्रथमतः लाभकारी था क्योंकि यह मुख्यतः पैगंबरों (*अनबिया*) और सुल्तानों (*सलातीन*) से लाभ पाने का ज़रिया था जिनके कृत्यों को स्वर्ग की पुस्तकों में दर्ज किया गया था ...'। 'बरनी *कुरान* को एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में परिभाषित करता है, और वस्तुतः *कुरान* ने इस्लामिक इतिहास लेखन के विकास में केंद्रीय भूमिका निभायी थी' (ऑवर 2015: 212)। 'उसके लिए, ''अंकिंचनों के अनुभव संपत्ति धारण करने वालों के लिए एक सबक होते हैं, धूर्त लोगों के बुरे चरित्र तथा दुष्टतापूर्ण व्यवहार को नकारने से अच्छा आचरण रखने वाले ईश्वर की अनुकंपा का संरक्षण पाते हैं''' (ऑवर 2015: 212-213)। पीटर हार्डी का विश्वास है, 'बरनी इतिहास का व्यवहार धर्म-विद्या की एक शाखा के रूप में करता है'। हार्डी के तर्कों को खारिज करते हुए निज़ामी कहते हैं कि, 'जिस कारण बरनी इतिहास के अध्ययन को *हदीस* के अध्ययन के समकक्ष रखता है वह *हदीस* के धर्मशास्त्रीय तत्व नहीं है बल्कि *उसूल-ए असनाद* ... *हदीस* के विद्वानों द्वारा विकसित आलोचनात्मक सिद्धांत हैं।' सिद्दीक़ी इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि अपनी *फ़तावा* और *तारीख़* के प्रथम संस्करण में बरनी मुश्किल से ही एक उपदेश देने वाले इतिहासकार के रूप में नज़र आता है, इसके बजाय उसका धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण प्रत्यक्षतः प्रकट होता है। उसने जो *फ़तावा* में लिखा

है वह फ़िरोज़ के काल में लिखना मुश्किल था, जब मुस्लिम रूढ़ीवादी तत्व प्रभावशाली बन चुके थे। इस प्रकार इतिहासकार के रूप में बरनी अपनी *तारीख़* के प्रथम संस्करण में जो पक्ष लेता है दूसरे संस्करण में परिस्थितियों ने उसे उन आधारभूत सिद्धांतों से विचलित होने पर मजबूर कर दिया था जिनका उसने पक्ष लिया था।

बरनी यह भी विश्वास करता है कि इतिहास नैतिक और आचारशास्त्रीय सबक सिखाता है। बरनी के लिए 'इतिहास का ज्ञान *अक़्ल* की प्रचुरता, विवेक (*शुऊर*), निजी *राय* और चीज़ों को व्यवस्थित करने (*तदबीर*) में योगदान देता है। बरनी के अनुसार इतिहास के ज्ञान से कोई व्यक्ति दूसरों के अनुभव से स्वयं के अनुभव को समृद्ध बनाता है। दूसरों के दुर्भाग्य को समझते हुए वह सजग बना रहता है' (ऑवर, 2015: 214)।

बरनी इतिहास की सलाहकारी भूमिका की भी प्रशंसा करता है। बरनी के अनुसार यह सुल्तानों को भविष्य की चुनौतियों से स्वयं को सुरक्षित बनाने में मार्ग-निर्देशन करता है, अतीत की घटनाओं से सबक लेते हुए। इतिहास परिस्थितियों को 'स्वीकारना' और 'धैर्य' रखना सिखाता है। बरनी के लिए इतिहास आने वाली पीढ़ियों के लिए एक 'परामर्शकारी साहित्य' के रूप में कार्य करता है। बरनी तर्क देता है कि, 'इतिहास उन्हें (राजा, मंत्रियों, और इस्लाम के सुल्तानों को) दुनिया के मामलों में अच्छे आचरण के अच्छे परिणाम और बुराई के दुष्परिणाम दिखाता है। इस प्रकार सुल्तान और शासकों को अच्छे कर्म करने की प्रेरणा मिलती है, न कि अत्याचार और शोषण करने की ....' (हार्डी 1960: 23)। हार्डी (1960: 39) का तर्क है कि 'बरनी के लिए इतिहास का अध्ययन विशुद्ध रूप से मानव अतीत का अध्ययन नहीं है; बरनी मानव की कथा की विशिष्टताओं और अनोखेपन में दिलचस्पी नहीं रखता है, वह अतीत को अच्छाई और बुराई के बीच युद्धक्षेत्र के रूप में देखता है। बरनी इतिहास का व्यवहार धर्म-विद्या की एक शाखा के रूप में करता है ... इतिहास के तथ्य वे हैं जिन्हें विश्वसनीय धार्मिक लोगों ने इस रूप में स्वीकार किया है'।

बरनी के लिए इतिहास लेखन का मुख्य घटक 'सत्य' और 'विश्वास' है। वह टिप्पणी करता है, 'जो कुछ भी इतिहासकार ग़लत इरादे से लिखता है, क़यामत के दिन यह उसके लिए गंभीर सज़ा का कारण बनेगा'। बरनी यह तर्क देता है कि किसी काल के इतिहास को कलमबद्ध करते हुए सत्य का वर्णन बिना किसी भय या पक्षपात के करना चाहिए। बरनी स्वीकारता है, 'जो भी मैंने लिखा है, सत्यता और ईमानदारी से लिखा है और यह *तारीख़* विश्वास करने योग्य है' (ऑवर, 2015: 215)। पीटर हार्डी (1957: 317) का कथन है, 'इस इतिहासकार का ''इतिहास-दर्शन'', उसका यह मत कि धार्मिक रूढ़िवादिता इतिहासकार की सत्यता को सुनिश्चित करती है, संकेत करता है कि बरनी की सत्य की अवधारणा धार्मिक तथा आचारशास्त्रीय है, न कि ऐतिहासिक।'

बरनी यह विचार प्रकट करता है कि इतिहास हमें सबक़ सिखाता है। विशेषकर अपनी *तारीख़-ए बरमका* के माध्यम से उसने यह बताया है कि सुल्तानों को पुराने स्थापित ख़ानदानों को तबाह नहीं करना चाहिए क्योंकि नए लोग सुल्तान की लोकप्रियता को वैसे ही प्रभावित करेंगे जैसे ख़लीफ़ा हारुन-अल रशीद के साथ हुआ था।

बोध प्रश्न-2

1) इतिहास के संबंध में बरनी की क्या अवधारणा है?

.....

.....

.....

2) क्या आप पीटर हार्डी के इस मत से सहमत हैं कि 'बरनी इतिहास को धर्मशास्त्र (theology) की एक शाखा के रूप में देखता है'?

.....

.....

.....

12.5 बरनी के लेखन में ऐतिहासिक तथ्य/पक्षपात

मोहम्मद हबीब टिप्पणी करते हैं कि बरनी की *तारीख़* में 'गंभीर ख़ामियाँ भी हैं; कुछ बेहद महत्वपूर्ण मामलों में उसने बाद के प्रत्येक इतिहासकार को गुमराह किया है, और फिर भी मध्यकालीन भारत में ऐसा दूसरा फ़ारसी इतिहास खोज पाना मुश्किल है जिसे उसके समकक्ष रखा जा सके' (हबीब 2016: 316)। इस ख़ामी का, हबीब टिप्पणी करते हैं, मुख्य कारण यह था कि बरनी प्राथमिक तौर पर अपने पर्यवेक्षण तथा अनुभव के आधार पर लिख रहा था, बजाय कि किसी सरकारी अभिलेखों के संग्रह या इस इरादे से दर्ज किए गए दस्तावेज़ों पर निर्भर रहने के। मोहम्मद हबीब (2016: 319) तर्क देते हैं कि बरनी के पास अपनी *तारीख़* की रचना करते समय कुछ नहीं था, सिवाय उसकी स्मृति, क़लम, स्याही और काग़ज़ के।

बरनी भारत पर **तरमाशिरीन** के आक्रमण का उल्लेख करना भूल जाता है। मोहम्मद हबीब का यह तर्क है कि बरनी द्वारा दिए गए मुहम्मद बिन तुग़लक़ की सांकेतिक मुद्रा के संक्षिप्त और ग़लत वर्णन ने इस क़दर ग़लतफ़हमी पैदा की कि इसका परिणाम उसे एक 'नितांत पागल' समझे जाने में निकला।

बरनी की *फ़तावा-ए जहाँदारी* का उद्देश्य मुस्लिम सुल्तानों या दिल्ली के सुल्तानों को इस्लाम के प्रति कर्तव्यों का निर्देश देना था, जिसे महमूद ग़ज़नी द्वारा अपने पुत्रों तथा इस्लाम के सुल्तानों को प्रस्तुत परामर्श के रूप में लिखा गया था। बरनी ने *फ़तावा* में सैद्धांतिक स्तर पर जो लिखा है और व्यवहारिक स्तर पर *तारीख़* में जो चित्रित किया गया है, उसके बीच लहज़े की समानता को लेकर बरनी की तीव्र आलोचना की गई है कि क्या बरनी के लेखन में उस काल की वास्तविक घटनाओं का प्रतिचित्रण हुआ है या बरनी ने मात्र अपने विचारों को ऐतिहासिक पात्रों की अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। सैयद हसन (1938: 96) यह टिप्पणी करते हैं कि 'विभिन्न चरित्रों के नाम पर दिए गए ये बहुत से उपदेश काल्पनिक प्रतीत होते हैं ...'। ए. बी. एम. हबीबुल्लाह (1941) इसी प्रकार के सरोकारों को प्रतिध्वनित करते हैं: 'यह लेखक के स्वयं का दिमाग़ है जिसे इस पुस्तक में प्रक्षेपित (projected) किया गया है न कि वास्तविक अतीत को'। पीटर हार्डी (1957: 21) भी यही मत रखते हैं कि 'बरनी ने अपने विचारों को *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही* के पात्रों की अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित किया है'। हार्डी मुहम्मद बिन तुग़लक़ के साथ बरनी के दो संवादों को उद्धृत करते हैं, इनमें से एक का संबंध सुल्तानों को मृत्युदंड की अनुमति है या नहीं इससे सरोकार रखता है और *फ़तावा* और *तारीख़* दोनों में वह इस पर बल देता है कि इसकी अनुमति नहीं है। एक दूसरे संवाद में बरनी प्रजा द्वारा अपने सुल्तान पर विश्वास खो देने की पहचान एक गंभीर बीमारी के रूप में करता है, अपनी *फ़तावा* में भी उसने उस शासक की निंदा की है जो आतंक का रास्ता अपनाता है। इन दोनों संवादों में यद्यपि मुहम्मद बिन तुग़लक़ उसके साथ असहमति जताता है और तलवार और दंड के रास्ते का अनुसरण करने का निर्णय लेता है। हार्डी यह तर्क देते हैं कि यह विचार कि एक सच्चे मुस्लिम सुल्तान को उन नवाचारों को निरुत्साहित करना चाहिए जो मुख्यतः दार्शनिकों द्वारा प्रचारित किए जाते हैं और निम्न कुलों में पैदा हुए लोगों (वह ग़ैर-तुर्कों को ऊँचे ओहदों पर नियुक्त करने का विरोधी था) तथा भ्रष्ट धर्मों के लोगों (*काफ़िरों*) को उच्च पदों पर आसीन नहीं करना चाहिए। यह चिंता समान रूप से *फ़तावा* और *तारीख़,* दोनों, में नज़र आती है। इसी प्रकार पीटर हार्डी का यह भी तर्क है कि अध्याय सात में बलबन के जिन विचारों पर प्रकाश डाला गया है वे उसके स्वयं के हैं न कि बलबन के।

लेकिन यदि यह स्वीकार किया जाए कि *फ़तावा, तारीख़* के बाद लिखी गई एक कृति है तब यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बरनी ने *फ़तावा* की रचना सुल्तान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक परामर्श-ग्रंथ के रूप में की कि एक आदर्श और सफल मुस्लिम सुल्तान को किस तरह होना चाहिए, जो उसके द्वारा प्राप्त किए गए उन आठ सुल्तानों के शासनकालों, जिन्हें उसने देखा था, के अनुभवों पर आधारित था।

फ़िरोज़ की अनुकंपा प्राप्त करने की इच्छा का परिणाम बरनी की व्याख्याओं में कई प्रकार के बदलावों और पक्षपातों में निकला, विशेषकर जब कोई बरनी की *तारीख़* के प्रथम और द्वितीय संस्करण की तुलना करता है। पहले संस्करण में वह एक ऐसे व्यक्ति के रूप में लिख रहा था जिसने सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ की विशेष कृपा का उपभोग किया था, वहीं दूसरे या अंतिम संस्करण में उसने तब सत्ताधारी रहे सुल्तान फ़िरोज़ को संतुष्ट करने के लिए उपमानों का समावेश और तर्कों को संशोधित

किया, इसके कारण उसके दृष्टिकोण में अत्यधिक पक्षपातपूर्ण नज़रिया सामने आता है। बरनी, जिसने सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ की अनुकंपा का उपभोग किया था, वह इस ग्रंथ के पहले संस्करण में मुहम्मद बिन तुग़लक़ के कृत्यों की प्रशंसा से भरा हुआ है, दूसरे संस्करण में या तो मुहम्मद बिन तुग़लक़ के कुछ कृत्यों को संक्षिप्त कर दिया गया है या उनकी व्याख्या का परिप्रेक्ष्य बदल दिया गया है। पीटर हार्डी यह तर्क देते हैं कि मुहम्मद बिन तुग़लक़ के शासन का वर्णन करते हुए 'वह अपने संरक्षणदाता [मुहम्मद बिन तुग़लक़] के प्रति कृतज्ञता तथा ईश्वर व मनुष्य के प्रति अपने कर्तव्य पर गहरे विश्वास के बीच बाँटा हुआ है।' बरनी का यह मानना था कि क्रूर दंड तथा अयोग्य अधिकारियों की नियुक्ति सल्तनत का विनाश करेंगे और सुल्तान की सत्ता को कमज़ोर बनाएँगे, जिसका मुहम्मद बिन तुग़लक़ में वैसे ही अभाव था क्योंकि वह यह नहीं जानता था कि कब कठोरता से पेश आना है और कब नरमी से। ऐसा ही उसके दोनों संस्करणों में फ़िरोज़ के पहले छः सालों के इतिहास के वर्णन में देखा जा सकता है। पहले संस्करण में यह बहुत ही संक्षेप में है तथा पूरे चार सालों के वर्णन को उसने केवल एक अध्याय में समेट लिया है। दूसरे संस्करण में यह बहुत विस्तृत है तथा छः अध्यायों में फैला हुआ है। पहले संस्करण में जहाँ मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अभिजात/कुलीन वर्ग (nobility) का वर्णन काफ़ी विस्तृत है और फ़िरोज़ द्वारा मुहम्मद तुग़लक के कृपापात्र *उमरा* को हटाने का उल्लेख करता है; वहीं दूसरे संस्करण में वह केवल स्वयं को भटनेर के क़िले में बंदी बनाए जाने का उल्लेख करता है, इसका भी उसने अधिक विस्तृत उल्लेख अपनी कृति *साहीफ़ा* में किया है। उसकी उच्च-कुल/निम्न-कुल की सोच भी इससे प्रभावित हुई थी। अपने पहले संस्करण में वह मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा निम्न-कुल के लोगों को उच्च ओहदों पर नियुक्त करने की आलोचना नहीं करता है; यहाँ तक कि उसने अज़ीज़ खम्मार का भी केवल ज़िक्र भर किया है; लेकिन दूसरे संस्करण में उसकी वाणी निम्न-कुल के लोगों के प्रति तीखी हो जाती है और वह मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अधीन शाही अनुकम्पा पाने वाले निम्न-कुलों की पृष्ठभूमि के लोगों की विस्तृत सूची प्रस्तुत करता है। अपने पहले संस्करण में बरनी सुल्तान को *शरिया* के विरुद्ध जाकर सज़ा न देने के संबंध में सलाह देने का साहस न कर पाने का कोई उल्लेख नहीं करता है। लेकिन, दूसरे संस्करण में वह पश्चाताप करते हुए स्वयं को 'निर्दोष' सिद्ध करने के प्रयास में विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है; वह यह साफ़ करता है कि वह धर्मभीरु लोगों को सज़ा देने की मुहम्मद बिन तुग़लक़ की नीति का हिस्सा नहीं था, इसके बजाय वह सुल्तान के इन कृत्यों के लिए 'अज्ञात मूल' के लोगों को ज़िम्मेदार ठहराता है। इसी तरह, अपने प्रथम संस्करण में वह मुश्किल से ही अलाउद्दीन को ग़लत रोशनी में दिखाता है। वह 'धर्म के प्रति उसकी उदासीनता' और '*शरिया* का बिना ख़याल किए सज़ा देने' के लिए उसे कोसता नहीं हैं। लेकिन, दूसरे संस्करण में वह अलाउद्दीन को आततायी कहता है, जो ख़ुदा से भी ख़ौफ़ नहीं खाता था।

बोध प्रश्न-3

1) क्या आप मोहम्मद हबीब के तर्क से सहमत हैं कि कुछ महत्वपूर्ण मामलों में बरनी ने बाद के इतिहासकारों को लगभग गुमराह किया है?

.....

.....

.....

2) 'विभिन्न व्यक्तियों के नाम पर बरनी द्वारा *फ़तावा* में दिए गए बहुत से उपदेश काल्पनिक प्रतीत होते है।' टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

12.6 बरनी की राजत्व-संबंधी अवधारणा

बरनी के लेखन में सुल्तान का केंद्रीय स्थान था। उसके विश्लेषण में, हालांकि 'राजा और उसकी प्रजा के बीच परस्पर दायित्व' का विचार सामने नहीं आता है। अपनी *फ़तावा* में बरनी प्रशंसा करते हुए कहता है, '*पादशाह* ईश्वर की आश्चर्यजनक रचनाओं में से एक है और ईश्वर अच्छी और बुरी, दोनों, तरह की परिस्थितियों का रचयिता है।' अतः, 'सुल्तान के चरित्र के अनुरूप राजत्व स्वयं में अच्छा

या बुरा हो सकता है' (हबीब, 1998: 26)। उच्च-कुल का विचार उस पर इतना हावी था कि महमूद ग़ज़नी और बलबन (तथाकथित उच्च कुलीनों) का निरूपण करते हुए, बरनी 'राजत्व' को 'ईश्वर के प्रतिनिधि' (viceregency of God) के रूप में प्रस्तुत करता है। सुल्तान को 'ईश्वर की प्रतिछाया' (*ज़िल्ल-अल्लाह*) के रूप में पेश किया गया है। लेकिन, जलालुद्दीन ख़लजी के संदर्भ में, 'राजत्व केवल छल और दिखावा था। यद्यपि बाह्य रूप से इसमें भव्यता और अलंकरण नज़र आता था, अंदर से यह कमज़ोर और तुच्छ (*ज़ार-ज़ार*) था'। इसके अलावा राजत्व का वास्तविक स्रोत 'शक्ति' और 'बल' था। किंतु बरनी राजतंत्र को बनाए रखने के लिए मुख्य कारक के रूप में हिंसा और बल के प्रयोग में अपने युग की व्यग्रता भी व्यक्त करता है। इसके साथ ही उसके अनुसार इसने राजशाही को 'सुभेद्य'(vulnerable) भी बनाया। वस्तुतः, बरनी ने भारत में इसका ही प्रत्यक्ष अनुभव किया था। लेकिन, इब्न ख़ल्दून के *असाबिया* (सत्ताधारी वर्ग के बीच एकता) के विचार का बरनी के लेखन में कोई स्थान नहीं है। यद्यपि दोनों ही वंशगत पतन के प्रति चिंतित थे और उनके पास इसका कोई समाधान नहीं था।

राजतंत्र की प्रतिष्ठा को सुनिश्चित करने के लिए बरनी ने सुल्तान द्वारा भव्यता और शानो-शौकत का प्रदर्शन करने पर बल दिया है, एक विचार जो सम्भवतः बलबन द्वारा किए गए ऐश्वर्य और शानो-शौकत के प्रदर्शन की सफलता से बरनी के मस्तिष्क में उभरा होगा। वह महमूद को यह कहते हुए उद्धृत करता है कि, 'ऐश्वर्य और शानो-शौकत का प्रदर्शन यद्यपि 'इस्लाम के विरूद्ध है लेकिन तब भी शासक के लिए ये आवश्यक हैं।' वह इसी प्रकार के शब्द बलबन की ज़बान में भी व्यक्त करता है, 'जब तक कोई सुल्तान दरबार के आयोजन और कठोर शिष्टाचारों को लागू करने में ईरानी सम्राटों (अकासिर, खुसरो) का अनुसरण नहीं करता है वह प्रजा के बीच आवश्यक भय (*हैबत*) पैदा नहीं कर पाएगा जो आज्ञाकारिता के लिए अनिवार्य है' (हबीब 1998: 26)।

12.7 बरनी के लेखन में समय तथा कालानुक्रम की अवधारणा

जहाँ एक इतिहासकार के रूप में बरनी इतिहासकार के शिल्प में निपुण है, कालानुक्रम और तिथियों को प्रस्तुत करने में वह अक्सर ग़लती कर बैठता है। समय की उसकी अवधारणा स्थिर नहीं है बल्कि उसमें परिवर्तन आता रहता है, यहाँ तक कि कालानुक्रम को भी अक्सर ग़लत तरीके से व्यवस्थित किया गया है, तिथियाँ या तो अक्सर ग़लत हैं या दी ही नहीं गई हैं। बरनी स्वयं अपनी *तारीख़* में स्वीकार करता है, 'इस विषय में मैं भरोसेमंद नहीं हूँ कि कौन सी विजय, विद्रोह या घटना पहले हुई और कौन सी बाद में, और मैंने घटनाओं के कालानुक्रम का सही अनुसरण नहीं किया है, ताकि बुद्धिमान लोग राज्य के मामलों को उनकी समग्रता में समझकर चेतावनी और बुद्धि से ग्रहण करें।' बरनी द्वारा मलिक बहाउद्दीन के विद्रोह का समय ग़लत उल्लिखित किया गया है, यह समस्या तब और गंभीर हो जाती है जब घटनाओं के ग़लत क्रम को 'कार्य-कारण के रूप' में प्रस्तुत किया जाता है।

12.8 बरनीः अर्थशास्त्री के रूप में

बरनी दृढ़तापूर्वक 'स्वतंत्र-अर्थव्यवस्था' के विचार के विरुद्ध था। बरनी का विश्वास था कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए कीमतों के उतार-चढ़ाव को विनियमित करना राज्य का प्राथमिक कर्तव्य था, जो सामान्य रूप से लोगों की भौतिक स्थिति के लिए लाभदायक होता। बरनी, संभवतः, अलाउद्दीन ख़लजी के मूल्य-नियंत्रण उपायों की सफलता से प्रभावित था जिसको वह आम जनता के हित में होने का श्रेय देता है। बरनी ने बड़ी ही सटीकता और अत्यधिक तथ्यात्मक सत्यता के स्तर की जानकारी के साथ अलाउद्दीन के मूल्य-नियंत्रण उपायों का वर्णन किया है। वह तर्क देता है कि 'व्यापारियों को दी गई स्वतंत्रता ने उन्हें जमाखोरी करने, बाज़ार में अभाव पैदा करने और फिर आवश्यक वस्तुओं के दाम बढ़ाने हेतु प्रोत्साहित कर दिया होता' (सिंद्दीक़ी, 2014: 207)। और इसका परिणाम जनता के उत्पीड़न में निकलता। बरनी अलाउद्दीन के बाज़ार नियंत्रण उपायों को मंगोल आक्रमणों के सिलसिले से दिल्ली सल्तनत में पैदा हुए 'गंभीर वित्तीय संकट' के समाधान के रूप में देखता है, जिसके लिए विशाल सेनाओं और क़िलेबंदी के माध्यम से सीमाओं को सुरक्षित बनाए जाने की जरूरत थी। बरनी के विश्लेषण के अनुसार अलाउद्दीन के

बाजार नियंत्रण उपायों की सफलता 'भारी कृषि कराधान' और इसके 'कठोर क्रियान्वयन' पर आधारित थी। बरनी का विश्लेषण है कि, 'कम कीमतों का यह मतलब नहीं था कि सभी की वास्तविक आय में वृद्धि हो गई थी। इसका तात्पर्य था कई लोगों की वास्तविक आय में वृद्धि हुई और बहुत से दूसरों की आय में कमी आयी' (हबीब 1984: 408)।

फ़िरोज़ शाह के शासन से संबंधित उसका छठा अध्याय फ़िरोज़ शाह द्वारा बनाई जा रही नहरों का विशिष्ट विवरण देता है, बरनी सुल्तान के इन उपायों को दीर्घकालिक परिणामों के रूप में देखता है और भविष्य की पीढ़ियों के लिए इसके लाभ को रेखांकित करता है। वह यह तर्क रखता है कि यह उपाय इस क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक वृद्धि के लिए लाभकारी साबित होंगे।

बोध प्रश्न-4

1) बरनी के राजत्व की अवधारणा को संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

2) बरनी के लेखन में समय और कालानुक्रम के विचार का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

3) एक अर्थशास्त्री के रूप में बरनी का विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

12.9 बरनी के विचारों में तर्क तथा तार्किकता

बरनी की रचनाएँ व्यापक रूप से तर्कबद्ध विचार को प्रदर्शित करती हैं। विडंबना है कि उसने अपने समय के तर्कशास्त्रियों के सामिप्य से अपने को दूर रखा। वह एक ऐसे समय में पैदा हुआ था जब इस्लामिक दुनिया में तर्कपूर्ण विज्ञानों (*इल्म-ए माकूल*) पर अधिक बल दिया जा रहा था। वह उनके प्रति अधिक आलोचनात्मक था। बरनी ने अपनी *फ़तावा* में यह दावा किया है कि तर्कशास्त्री/दार्शनिक (*फ़लासिफ़ा)* वध किए जाने योग्य हैं। इसी प्रकार वह **मुताज़िलाओं** का दमन करने के लिए महमूद की प्रशंसा करता है। बरनी अपने संरक्षणदाता मुहम्मद बिन तुग़लक़ की *माकूलत* पर विश्वास के लिए आलोचना करता है और वह धर्मशास्त्रियों के प्रति मुहम्मद बिन तुग़लक़ की कठोरता के पीछे इसे ही मुख्य कारण बताता है। बरनी मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा 'दार्शनिकों को संरक्षण देने और पैग़ंबर की परंपराओं के अध्ययन को नज़रअंदाज करने के लिए आलोचना करता है' (हार्डी 1960: 37)। इस प्रकार, बरनी के अनुसार, सुल्तान को तर्कशास्त्रियों/दार्शनिकों के ऊपर परंपरावादियों को तरज़ीह देनी चाहिए।

सादृश्यता और व्याख्या बरनी के ऐतिहासिक विवरण के प्रमुख तत्व हैं। बरनी ने अत्यधिक बल प्रयोग द्वारा विभिन्न वंशों के विध्वंस और प्रतिस्थापन को देखा था (बलबन ने इलबरियों को उखाड़ फेंका था, और बलबन के वंशजों को ख़लजियों ने) इसलिए बरनी अपनी *फ़तावा* में वंशगत शासन के पक्ष में बलपूर्वक तर्क देता है: 'अगर कोई थोड़ी-बहुत शक्ति हासिल कर लेता है, वह एक अधिक्षेत्र पर कब्ज़ा कर लेता है, अपने से पूर्व वहाँ स्थापित व्यक्ति को नष्ट कर और स्वयं को सुल्तान घोषित कर देता है इसके बाद उसे *उमरा,* समर्थकों और दरबारियों का सहयोग मिलता है ... किंतु जब उसकी मृत्यु हो जाती है या उसकी हत्या कर दी जाती है, और अन्य व्यक्ति सुल्तान बन जाता है; और तब वह पुराने शासक के *उमरा* और उसके सेवकों के परिवारों और सम्पत्तियों को नष्ट कर देता है, और नए *उमरा* वर्ग को लाकर स्वयं की स्थिति को मज़बूत बनाता है, यदि वह पुराने लोगों को बनाए रखेगा, तो न तो वे उस पर विश्वास कर पाएँगे और न ही वह उन पर' (हबीब 1998: 27-28)।

बरनी बलबन की नीतियों की अत्यधिक 'रक्तरंजित, निर्भीक और दृढ़निश्चयी' होने के लिए आलोचना करता है (हार्डी, 1960: 30)। वह बलबन द्वारा जघन्य रूप से शेर ख़ान (बलबन का चचेरा भाई) और **तुग़रिल** की हत्या करने के लिए अत्यधिक आलोचनात्मक रवैया अपनाता है। यद्यपि उसका तर्क धार्मिक लहज़ा लिए हुए है कि यह *शरिया* के विरुद्ध है और उसे अपने कृत्यों के लिए क़यामत के दिन अल्लाह के सामने जवाब देना होगा।

12.10 बरनी की उच्च-कुल तथा निम्न-कुल की अवधारणा

बरनी ने न केवल तर्कशास्त्रियों (rationalists) के सानिध्य से स्वयं को दूर रखा था बल्कि वह 'निम्न-कुल' ('निम्न' वंश में उत्पन्न जन) के लोगों को नीची निग़ाह से देखता था और 'उच्च-कुल' में उत्पन्न, अभिजात्य समूह के लोगों के पक्ष में था। उसने इस तरह की नियुक्तियों के प्रति अत्यंत कड़ा रुख अपनाया था। उसके लिए 'निम्न-कुल' से संबंध रखने वाले लोग 'शाही अनुकंपा' पाने के अधिकारी नहीं थे। अतः सुल्तान को केवल 'अभिजात्य कुल' में जन्म लेने वाले लोगों को ओहदे प्रदान करने चाहिए। इस मामले में वह इस सीमा तक चला गया है कि उसके अनुसार 'निम्न-कुलों' में उत्पन्न धर्मांतरित लोगों के बच्चों को *मदरसों* (शिक्षण संस्थान) में प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए। केवल अभिजात्य परिवारों के लोगों को ही ईश्वर द्वारा शासन करने के लिए 'चुना गया' है। न्याय और स्थिरता के लिए 'उच्च कुलीनों का अस्तित्व' आवश्यक है। यहाँ वह मुख्यतः ख़लजी और तुग़लक़ शासकों (विशेषकर मुहम्मद तुग़लक़) द्वारा तथाकथित 'निम्न-कुल' के लोगों को ऊँचे पदों पर नियुक्त करने के लिए आलोचना कर रहा था। उसके लिए *बाज़ार* के लोग (व्यापारी और व्यवसायी) शाही अनुग्रह के पात्र नहीं हैं। बरनी टिप्पणी करता है कि, 'उच्च प्रशासनिक पदों पर उनकी नियुक्ति का परिणाम अस्थिरता में निकलेगा और इससे क़ानून और व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा होगी' (सिद्दीक़ी 2014: 207)। इसे आई. एच. सिद्दीक़ी 'इतिहास का अभिजात्यवादी मत' कहते हैं (सिद्दीक़ी, 2014: 220)।

'निम्न-कुलों' के प्रति उसकी इतनी अधिक कटुता थी कि उसके लिए 'अज्ञात वंश' के व्यक्ति द्वारा लिखे गए इतिहास पर 'विश्वास' करना अनुचित था। वह तर्क देता है कि ऐसा सुल्तान जो 'निम्न-कुल' के लोगों के साथ संबंध रखता है वह अपने 'शासन की स्थिरता और इस्लाम की सर्वोच्चता को ख़तरा पहुँचाता है'। मुबारक ख़लजी द्वारा खुसरो ख़ान बरवरी की नियुक्ति को उद्धृत करते हुए, जिसका अंतिम परिणाम खुसरो ख़ान के हाथों मुबारक ख़लजी की हत्या में निकला, बरनी कहता है कि सुल्तान को 'अयोग्य सेवकों' को आगे नहीं बढ़ाना चाहिए।

संभवतः अन्य किसी *तारीख़* में 'निम्न-कुलों' के प्रति ऐसी कड़वाहट का गहरा भाव नहीं है जैसा बरनी के लेखन में नज़र आता है। इस तरह की कड़वाहट की एक संभावित व्याख्या इस तथ्य से की जा सकती है कि बरनी को अपनी विद्वता और विद्वानों के कुल से संबंधित होने की पृष्ठभूमि के बावजूद शाही अनुकंपा प्राप्त करने हेतु काफ़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी और इसका कारण उसने प्रत्यक्षतः तुग़लक़ सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा 'निम्न-कुलों' के नवीन वर्गों के लोगों को सेवा में शामिल करने पर लगाया है। उसका विश्लेषण इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि सल्तनत काल के दौरान 'निम्न-कुल' के लोगों के उत्थान ने निश्चित रूप से पुराने अमीरों/कुलीनों और नए नियुक्त वर्गों के बीच सामाजिक तनाव को जन्म दिया और जिसने, परिणामस्वरूप, 'सामाजिक संतुलन' में गड़बड़ी पैदा की।

12.11 बरनी के लेखन में धर्म तथा इतिहास

अन्य मुस्लिम इतिहासकारों/तारीख़नवीसों की तरह बरनी में भी प्रत्येक चीज़ के लिए *क़ुरान* और पैग़ंबर को श्रेय देने का बोध काफ़ी गहरा है। बरनी अपने समय के धर्म-शास्त्र में प्रशिक्षित था और *शरिया* पर आधारित और शासित सत्ता पर उसका विश्वास था। राजा और धर्मविदों को उसने *शरिया* के सिद्धांतों और सच्चे ईमान के रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है। उसने 'राजत्व और धर्म' को समरूप देखा है। विचित्र है कि उसने इस्लामी राजव्यवस्था में *ख़िलाफ़त* की केंद्रीय भूमिका को नज़रअंदाज किया है, यह 1258 में मंगोलों द्वारा बग़दाद की *ख़िलाफ़त* को नष्ट किए जाने का प्रभाव हो सकता है।

उसकी *फ़तावा* में 'महमूद अपने पुत्रों को *मुहतसिबों* या आचरण पर नज़र रखने वाले अधिकारियों की *शरिया* का अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु नियुक्ति करने, शराब बनाने पर रोक लगाने और वेश्याओं, नाचने-गाने वालों, इत्यादि को प्रतिबंधित करने की सलाह देता है' (हबीब 1998: 33)। हालांकि वह

अपनी *तारीख़* में अधिक व्यावहारिक और नरम दिखाई पड़ता है, 'अगर पाप के धंधे में लगे हुए लोग निकृष्ट स्थानों में ही बने रहें और उनके पाप नज़र में ना आएँ तो ऐसे लोगों को प्रतिबंधित नहीं करना चाहिए क्योंकि अन्यथा कई धूर्त लोग, अपनी लोलुपता के बल से, पुरुषों के हरम में प्रवेश पा जाएँगे' (हबीब 1998: 33)।

वह इस्लाम और इस्लामी सिद्धांतों का रक्षक था, अतः जो कोई भी इस्लाम के भीतर इस्लामी सिद्धांतों को भंग करता, उसे और *काफ़िर/ज़िम्मी* को दंड दिए जाने की आवश्यकता थी। *शाफ़ई* सिद्धांत सभी *काफ़िरों* को इस्लाम में धर्मांतरित करने की वकालत करता है। यद्यपि बरनी ने अपनी *साहीफ़ा-ए नात-ए मुहम्मदी* में यह तर्क दिया है कि इल्तुतमिश ने अपने मंत्री की सलाह के इस विचार को नकार दिया था। इस प्रकार वह यह संकेत प्रस्तुत करता है कि राजनीतिक व्यवहारिकता, न कि इस्लामिक सिद्धांत, शासन की कला में प्रभावी होती है। लेकिन *काफ़िरों* से कहीं अधिक इस्लाम के विधर्मियों (इस्लाम के भीतर के तर्कशास्त्री/दार्शनिकों) की बरनी द्वारा अधिक कड़ी आलोचना की गई है।

बरनी के पहले संस्करण में अलाउद्दीन की धार्मिक आलोचना नहीं की गई है, लेकिन अपने दूसरे संस्करण में बरनी अलाउद्दीन की धर्म के प्रति उदासीनता और उसके द्वारा की गई *शरिया* की उलाहना की निंदा करता है। वह आलोचना करता है कि लोग क्यों सुल्तान की प्रशंसा आध्यात्मिक शक्तियाँ धारण करने के लिए करते हैं और उसके लिए प्रार्थना करते हैं। वह सुल्तान को एक 'आततायी बताते हुए आश्चर्य करता है कि कैसे ख़ुदा से ख़ौफ़ न खाने वाला कोई व्यक्ति आध्यात्मिक शक्तियों को धारण कर सकता है' (सिद्दीक़ी 2014: 210)।

बोध प्रश्न-5

1) बरनी तर्कवादी विचारों और दार्शनिकों के विरुद्ध क्यों था?

.....

.....

.....

2) उच्च कुल और निम्न कुल के संबंध में बरनी के विचार क्या थे?

.....

.....

.....

12.12 सारांश

मध्यकालीन भारत के इतिहासकारों के बीच अपने इतिहास के गहरे बोध के कारण बरनी अलग नज़र आता है। वह एक इतिहासकार के कर्तव्य के प्रति सचेत था। अपनी *तारीख़* की प्रस्तावना में वह विस्तार से इतिहासकार का ध्यान कहाँ केंद्रित होना चाहिए, इसकी व्याख्या करता है। अपनी संपूर्ण *तारीख़* में वह 'सत्य' को प्रस्तुत करने पर बल देता रहा है। यद्यपि, वह वस्तुनिष्ठता तथा पक्षपात-विहीन इतिहास को प्रस्तुत करने का दावा करता है, लेकिन उसका वृत्तांत पक्षपात से मुक्त नहीं है। उसकी परिस्थितियों, विशेषकर उसके अंतिम वर्षों की घोर ग़रीबी, ने उसके लेखन के साथ ही उसके विश्लेषण पर भी गहरा प्रभाव डाला था। यह उसकी *तारीख़* के दो संस्करणों में बहुत स्पष्ट नज़र आता है जहाँ उसकी व्याख्या और तथ्यात्मक जानकारियों में परिवर्तन आ गया है और अक्सर उन्हें संशोधित किया गया है। बरनी अपनी तुर्क वंश-परम्परा के प्रति भी सचेत था। अपनी विद्वता तथा अभिजात्य पृष्ठभूमि के बावजूद उसे शाही अनुकंपा काफ़ी देर से प्राप्त हुई थी, और बाद में एक बार फिर उसे पूरी तरह से शाही अनुकंपा से निष्कासित कर दिया गया था। इन सबका दोष वह 'निम्न-कुलों' पर की गई कृपा पर लगाता है। अपनी संपूर्ण *तारीख़* और *फ़तावा* में वह 'निम्न-कुल' के लोगों को तुग़लक़ सुल्तानों द्वारा उच्च पदों पर आसीन करने की कड़ी आलोचना करता है। और बलबन की उनसे दूरी बनाए रखने के लिए तारीफ़ करता है।

कालानुक्रम और तिथियों को लेकर ख़ामी होने के बावजूद बरनी कार्य और कारण के विश्लेषण के संबंध में काफ़ी मज़बूत नज़र आता है। अपने संपूर्ण लेखन में बरनी एक सच्चा परंपरावादी था और

तर्कशास्त्र तथा दार्शनिकों से घृणा करता था। इतिहास के अपने गहरे बोध के बावजूद उसके ऐतिहासिक विश्लेषण का हर रास्ता *कुरान, शरीयत* और *हदीस* से होकर जाता था। इसीलिए पीटर हार्डी ने बरनी पर 'इतिहास की व्याख्या धर्म-विद्या की एक शाखा के रूप में करने का' आरोप लगाया है।

12.13 शब्दावली

अल-बैहाक़ी — बैहाक़ी (जन्म 994 सी ई) शाफ़ई *फ़िक्ह* (न्यायशास्त्र) और *हदीस* का विद्वान था और इस्लामी धर्म-विद्या की अशरायी शाखा से संबंधित था। उसने *हदीस* की परम्परागत व्याख्या में महत्वपूर्ण योगदान दिया था

अमीर हसन सिज्ज़ी — वह अमीर खुसरो तथा ज़ियाउद्दीन बरनी का युवा समकालीन था। साथ ही वह निज़ामुद्दीन औलिया का शागिर्द भी था। निज़ामुद्दीन औलिया के आग्रह पर उसने *फ़वायद-उल फुआद* (*मलफूज़ात*; शेख़ की वार्ताएँ तथा परिचर्चाएँ) की भी रचना की। इसमें 1309 से 1322-1323 तक के काल के संवादों को शामिल किया गया है

अमीर खुर्द — अमीर खुर्द (मृ. 1368-1369) अपने समय के सूफ़ियों की जीवनी *सियार-उल औलिया* लिखने के लिए जाना जाता है। उसके पिता और दादा बाबा फ़रीद *गंज-ए शकर* के शिष्य थे। उसके दादा की मृत्यु के बाद उसके पिता दिल्ली चले आए। अमीर खुर्द का जन्म भी दिल्ली में हुआ था, वह निज़ामुद्दीन औलिया और बाद में नसीरुद्दीन चिराग-ए दिल्ली का शागिर्द बना। फ़िरोज़ तुग़लक़ के दौर में उसने उपर्युक्त संस्मरण को लिखा था

हाजिब — *अमीर हाजिब* दरबार का मुख्य व्यवस्थापक था। उसे *बारबक* भी कहा जाता था। वह दरबार के समारोहों का प्रमुख था। *हाजिब* उसके सहायक होते थे, सुल्तान को पेश की गई समस्त अर्ज़ियाँ उसके माध्यम से जाती थीं। कुछ *हाजिब* हमेशा सुल्तान की सेवा में हाज़िर रहते थे

मुतज़िलाई — इस्लाम का चिंतनशील सिद्धांतशास्त्र। इसका संस्थापक मुतज़िला था। अब्बासी ख़लीफ़ाओं ने मुतज़िला के दर्शन को नकार दिया था। कई प्रमुख मुतज़िलाइयों ने सुन्नी इस्लाम के अपने मत-सम्प्रदाय स्थापित किए। उनमें से सर्व-प्रमुख था अबुल हसन अल-अशारी जो इस्लामी न्यायशास्त्र के अशारायी मत का संस्थापक था

तरमाशिरीन — एक चग़ताई ख़ान – दव्वा ख़ान – का पुत्र अलाउद्दीन तरमाशिरीन मावराउन्नहर का शासक था। मुल्तान तथा सिंध पर आक्रमण करते हुए वह मेरठ के निकट (1328-1329) तक पहुँच गया था। लेकिन मुहम्मद तुग़लक़ ने सफलतापूर्वक उसके हमले को निष्प्रभावी बना दिया था

तुग़रिल — *तुर्कान-ए चिहिलग़ानी* (चालीस का समूह) का सदस्य। वह बलबन के गद्दी पर बैठने के वक्त लखनौती का *मुक़्ता* था। बलबन के आठवें राज्य-वर्ष (1275) में उसने विद्रोह किया और सुल्तान मुग़ीसुद्दीन की उपाधि धारण की। अंततः इस विद्रोह का दमन कर दिया गया तथा तुग़रिल और उसके समर्थकों को कठोर दंड दिया गया

वकील-ए दर — वह राजपरिवार/राजदरबार का प्रमुख अधिकारी था। राजघराने के वेतन और अन्य सभी प्रकार के भुगतान उसके द्वारा स्वीकृत होते थे। सभी शाही आदेशों को उसके माध्यम से जारी किया जाता था

12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 12.2

2) देखें भाग 12.3; ख) *तारीख़-ए बरमका*

3) देखें भाग 12.3; क) *हसरतनामा*

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 12.4

2) देखें भाग 12.4

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 12.5

2) देखें भाग 12.5

बोध प्रश्न-4

1) देखें भाग 12.6

2) देखें भाग 12.7

3) देखें भाग 12.8

बोध प्रश्न-5

1) देखें भाग 12.9

2) देखें भाग 12.10

12.15 संदर्भ ग्रंथ

ऑवर, ब्लेन, (2015) 'प्री-इंटेलेक्चुअल डिबेट्स ऑन नॉलेज ऑफ़ हिस्ट्री एंड ज़ियाउद्दीन बरनीस *तारीख-ए फ़िरोज़शाही*', *इंडियन एकोनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, भाग 52 (2), पृ. 207-223.

बरनी, सैयद हसन, (1938) 'ज़ियाउद्दीन बरनी', *इस्लामिक कल्चर*, भाग XII: 1, पृ. 76-97.

हबीब, इरफ़ान, (1998) 'ज़िया बरनीस विज़न ऑफ़ द स्टेट', *द मिडीवल हिस्ट्री जर्नल*, भाग 2 (1), पृ. 19.36.

हबीब, इरफ़ान, (1984) 'द प्राइस रेग्युलेशंज़ ऑफ़ अलाउद्दीन ख़लजी – अ डिफ़ेन्स ऑफ़ ज़िया बरनी', *इंडियन एकोनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, भाग 21 (4), पृ. 393-414.

हबीब, मोहम्मद, (1950) '*साहीफ़ा-ए नात-ए मुहम्मदी* ऑफ़ ज़ियाउद्दीन बरनी', *मिडीवल इंडिया क्वार्टरली*, भाग 1 (3.4), पृ. 100-106

हबीब, मोहम्मद, (2016) 'लाइफ़ एंड थॉट ऑफ़ ज़ियाउद्दीन बरनी', मोहम्मद हबीब, इरफ़ान हबीब द्वारा सम्पादित, *स्टडीज़ इन मिडीवल इंडियन पालिटी एंड कल्चरः देल्ही सल्तनेत एंड इट्स टाइम्स* (दिल्लीः ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), मूल रूप से *मिडीवल इंडिया क्वार्टरली*, 1957 व 1958 में प्रकाशित.

हबीबुल्लाह, ए. बी. एम., (1941) 'री-इवैल्यूएशन ऑफ़ द लिटरेरी सोर्सेज़ ऑफ़ प्री-मुग़ल हिस्ट्री', *इस्लामिक कल्चर*, भाग XV, पृ. 207-216.

हार्डी, पीटर, (1957) 'द ओरेटियो रेक्टा ऑफ़ बरनीज़ *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही* – फ़ैक्ट ऑर फ़िक्शन', *बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ऑरीएंटल एंड अफ़्रीकन स्टडीज़*, भाग 20, पृ. 315-321.

हार्डी, पीटर, (1960) *हिस्टॉरीयंज़ ऑफ़ मिडीवल इंडिया* (लंदनः लुजाक एंड कम्पनी लि.).

हसन, एस. नुरूल, (1957 व 1958) 'लाइफ़ एंड थॉट ऑफ़ ज़ियाउद्दीन बरनी', *मिडीवल इंडिया क्वार्टरली*, भाग 3 (1-2) (3-4), पृ. 1-12; 197-252; बाद में यह *द पोलिटिकल थियोरी ऑफ़ द देल्ही सल्तनेत*, इलाहाबाद, 1960 में प्रकाशित हुआ.

निज़ामी, के. ए., (1983) *ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टॉरीयंज़ ऑफ़ इंडिया* (दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल).

सिद्दीक़ी, इक़्तिदार हुसैन, (2014) *इंडो-पर्शियन हिस्टॉरीआग्रफ़ी अपटू फ़ॉर्टीन्थ सेंचरी*, अध्याय 9: 'ज़ियाउद्दीन बरनीः अ थिंकर हिस्टोरीयन' (नई दिल्लीः प्राइमस बुक्स).

12.16 शैक्षणिक वीडियो

ए टॉक ऑन 'तारीख़-ए फिरोज़शाही' बाय बरनी विद प्रो. अजी़ज़ुद्दीन हुसैन
https://www.youtube.com/watch?v=2oRpdMxeAt4

ज़ियाउद्दीन बरनी; हिस्टॉरियन एंड पॉलीटिकल थ्योरिस्ट
https://www.youtube.com/watch?v=FTeyUAnKPlg

पॉलीटिकल थॉट ऑफ़ ज़ियाउद्दीन बरनी
https://www.youtube.com/watch?v=ROjlme3uer0